राष्ट्रधर्म व राजधर्म

सुरेश (भय्याजी) जोशी

सरकार्यवाह, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

दुनिया के भिन्न-भिन्न देशों का, समाजों का अपना एक चिन्तन होता है। यह चिन्तन, विकास की प्रक्रिया में निरन्तर चलता रहता है। उस चिन्तन के प्रकाश में सामाजिक पद्धतियां विकसित होती हैं, जीवन शैली विकसित होती है, विकास के मार्ग प्रशस्त होते जाते हैं। विकास के सन्दर्भ में अनुकूल व्यवस्थाओं का निर्माण भी होता है। यह स्वाभाविक प्रक्रिया है। इस स्वाभाविक प्रक्रिया के चलते उस देश की एक पहचान बनती है। बहुत बार ऐसा होता है कि चिन्तन किसका है यह कहना मुश्किल होता है। किसी चिन्तन का परिचय किसी व्यक्ति के नाम से नहीं मिलता है, बल्कि उस समाज की शैली देखकर उसका साक्षात्कार होता है। किसी व्यक्ति ने चिन्तन रखा, वह कई बार विस्मृति में चला जाता है। भारत में तो यह बात विशेषतया लागू होती है। इस देश के चिन्तन का आधार वेद रहे हैं, और वेद किसने लिखे, यह हमें मालूम नहीं। पर एक बात निश्चित है, कि किसी एक व्यक्ति ने नहीं लिखे।

भारत के सन्दर्भ में हजारों वर्षों से भारतीय ऋषियों ने मूलभूत चिन्तन किया। समग्रता से किया, गहराई से किया। यह वेदों में समाया है। कभी-कभी चिन्तन का दायरा जाने अनजाने में एक भौगोलिक सीमा में सिमट जाता है, समूह विशेष तक सीमित रह जाता है। परन्तु भारतीय चिन्तन न काल की सीमाओं में बांधा जा सकता है, न समूह विशेष के लिए है। क्योंकि भारतीय परम्परा समस्त विश्व के कल्याण की चिंता करती रही है। अपने चिन्तन में विश्व मंगल की कामना किसी भौगोलिक सीमा से बंधी हुई नहीं है। महाराष्ट्र में सन्त ज्ञानेश्वर ने गीता पर विश्लेषण करते हुए अंत में पसायदान के रूप में अगर कुछ मांगा है तो वह है, ''आता विश्वात्मके देवे।'' यानि, इस समस्त विश्व को देने वाली जो ईश्वरीय शक्ति है, उससे वे मांग रहे हैं। भारतीय चिन्तन में व्यापकता, विशालता, समग्रता और गहराई प्रारम्भ से ही रही है।

अपने मनीषियों की एक और विशेषता रही कि उन्होंने सुनने-समझने के दरवाजे कभी बन्द नहीं किए। ऐसा भी हमने नहीं कहा कि हमारे चिन्तन में